पंचम सोपान-मंगलाचरण

श्लोक :

*** शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्। रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥1॥

भावार्थ:-

शान्त, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणों से परे), निष्पाप, मोक्षरूप परमशान्ति देने वाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजी से निरंतर सेवित, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे बड़े, माया से मनुष्य रूप में दिखने वाले, समस्त पापों को हरने वाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि राम कहलाने वाले जगदीश्वर की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

*** नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोषरहितंकुरु मानसं च॥2॥

भावार्थ:-

हे रघुनाथजी! मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबकेअंतरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं) कि मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिए और मेरे मन को काम आदि दोषों से रहित कीजिए॥2॥

*** अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्। सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥3॥

भावार्थ:-

अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्य रूपी वन (को ध्वंस करने) के लिए अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, संपूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथजी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान्‌जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥3॥

हनुमान्‌जी का लंका को प्रस्थान, सुरसा से भेंट, छाया पकड़ने वाली राक्षसी का वध

चौपाई :

*** जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥ तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥1॥

भावार्थ:-

जाम्बवान् के सुंदर वचन सुनकर हनुमान्‌जी के हृदय को बहुत ही भाए। (वे बोले-) हे भाई! तुम लोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तब तक मेरी राह देखना॥1॥

*** जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥ यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ

माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥2॥

भावार्थ:-

जब तक मैं सीताजी को देखकर (लौट) न आऊँ। काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदय में श्री रघुनाथजी को धारण करके हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥2॥

*** सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥ बार-बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥3॥

भावार्थ:-

समुद्र के तीर पर एक सुंदर पर्वत था। हनुमान्‌जी खेल से ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्री रघुवीर का स्मरण करके अत्यंत बलवान् हनुमान्‌जी उस पर से बड़े वेग से उछले॥3॥

*** जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥ जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥4॥

भावार्थ:-

जिस पर्वत पर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले (जिस पर से वे उछले), वह तुरंत ही पाताल में धँस गया। जैसे श्री रघुनाथजी का अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्‌जी चले॥4॥

*** जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥5॥

भावार्थ:-

समुद्र ने उन्हें श्री रघुनाथजी का दूत समझकर मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करने वाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)॥5॥

दोहा :

*** हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम। राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥1॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी ने उसे हाथ से छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा- भाई! श्री रामचंद्रजी का काम किए बिना मुझे विश्राम कहाँ?॥1॥

चौपाई :

*** जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥ सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥1॥

भावार्थ:-

देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान्‌जी को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धि को जानने के लिए (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पों की माता को भेजा, उसने आकर हनुमान्‌जी से यह बात कही-॥1॥

*** आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥ राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥2॥

भावार्थ:-

आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जी ने कहा- श्री रामजी का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजी की खबर प्रभु को सुना दूँ॥2॥

*** तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥ कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥3॥

भावार्थ:-

तब मैं आकर तुम्हारे मुँह में घुस जाऊँगा (तुम मुझे खा लेना)। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे। जब किसी भी उपाय से उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्‌जी ने कहा- तो फिर मुझे खा न ले॥3॥

*** जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा ॥ सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥4॥

भावार्थ:-

उसने योजनभर (चार कोस में) मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जी ने अपने शरीर को उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान्‌जी तुरंत ही बत्तीस योजन के हो गए॥4॥

*** जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥ सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥5॥

भावार्थ:-

जैसे-जैसे सुरसा मुख का विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्‌जी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोस का) मुख किया। तब हनुमान्‌जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया॥5॥

*** बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥ मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥6॥

भावार्थ:-

और उसके मुख में घुसकर (तुरंत) फिर बाहर निकल आए और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। (उसने कहा-) मैंने तुम्हारे बुद्धि-बल का भेद पा लिया, जिसके लिए देवताओं ने मुझे भेजा था॥6॥

दोहा :

*** राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान। आसिष देइ गई सोहरषि चलेउ हनुमान॥2॥

भावार्थ:-

तुम श्री रामचंद्रजी का सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धि के भंडार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गई, तब हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥2॥

चौपाई :

*** निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥ जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥1॥

भावार्थ:-

समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आकाश में जो जीव-जंतु उड़ा करते थे, वह जल में उनकी परछाईं देखकर॥1॥

*** गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥ सोइ छल हनूमान् कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥2॥

भावार्थ:-

उस परछाईं को पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे (और जल में गिर पड़ते थे) इस प्रकार वह सदा आकाश में उड़ने वाले जीवों को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जी से भी किया। हनुमान्‌जी ने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया॥2॥

*** ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥ तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥3॥

भावार्थ:-

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर श्री हनुमान्‌जी उसको मारकर समुद्र के पार गए। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी। मधु (पुष्परस) के लोभ से भौंरे गुंजार कर रहे थे॥3॥

लंका वर्णन, लंकिनी वध, लंका में प्रवेश

*** नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥ सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥4॥

भावार्थ:-

अनेकों प्रकार के वृक्ष फल-फूल से शोभित हैं। पक्षी और पशुओं के समूह को देखकर तो वे मन में (बहुत ही) प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्‌जी भय त्यागकर उस पर दौड़कर जा चढ़े॥4॥

*** उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥ गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥5॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! इसमें वानर हनुमान्‌की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभु का प्रताप है, जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा

नहीं जाता॥5॥

*** अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥6॥

भावार्थ:-

वह अत्यंत ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोने के परकोटे (चहारदीवारी) का परम प्रकाश हो रहा है॥6॥

छंद :

*** कनक कोटि बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना। चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥ गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। बहु रूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥1॥

भावार्थ:-

विचित्र मणियों से जड़ा हुआ सोने का परकोटा है, उसके अंदर बहुत से सुंदर-सुंदर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुंदर मार्ग और गलियाँ हैं, सुंदर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। हाथी-घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है! अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं, उनकी अत्यंत बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती॥1॥

*** बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं। नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥ कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं। नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥2॥

भावार्थ:-

वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गंधर्वों की कन्याएँ अपने सौंदर्य से मुनियों के भी मन को मोहे लेती हैं। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीर वाले बड़े ही बलवान् मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक-दूसरे को ललकारते हैं॥2॥

*** करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं। कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥ एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही। रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥3॥

भावार्थ:-

भयंकर शरीर वाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानी से) नगर की चारों दिशाओं में (सब ओर से) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरों को खा रहे हैं। तुलसीदास ने इनकी कथा इसीलिए कुछ थोड़ी सी कही है कि ये निश्चय ही श्री रामचंद्रजी के बाण रूपी तीर्थ में शरीरों को त्यागकर परमगति पावेंगे॥3॥

दोहा-

***पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार। अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥3॥

भावार्थ:-

नगर के बहु संख्यक रखवालों को देखकर हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि अत्यंत छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ॥3॥

चौपाई :

*** मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥ नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥1॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी मच्छड़ के समान (छोटा सा) रूप धारण कर नर रूप से लीला करने वाले भगवान्‌ श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके लंका को चले (लंका के द्‌वार पर) लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह बोली- मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है?॥1॥

*** जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥ मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥2॥

भावार्थ:-

हे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना जहाँ तक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खून की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढक पड़ी॥2॥

*** पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥ जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंच कहा मोहि चीन्हा॥3॥

भावार्थ:-

वह लंकिनी फिर अपने को संभालकर उठी और डर के मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। (वह बोली-) रावण को जब ब्रह्माजी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसों के विनाश की यह पहचान बता दी थी कि-॥3॥

*** बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥ तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥4॥

भावार्थ:-

जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं श्री रामचंद्रजी के दूत (आप) को नेत्रों से देख पाई॥4॥

दोहा :

*** तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥4॥

भावार्थ:-

हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू केएक पलड़े में रखा जाए, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रखे हुए) उस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो लव (क्षण) मात्र के सत्संग से होता है॥4॥

चौपाई :

*** प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥ गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥1॥

भावार्थ:-

अयोध्यापुरी के राजा श्री रघुनाथजी को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए। उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है॥1॥

*** गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥ अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥2॥

भावार्थ:-

और हे गरुड़जी! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है, जिसे श्री रामचंद्रजी ने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान्‌जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान्‌ का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया॥2॥

*** मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥ गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥3॥

भावार्थ:-

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावण के महल में गए। वह अत्यंत विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥3॥

*** सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥ भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥4॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी ने उस (रावण) को शयन किए देखा, परंतु महल में जानकीजी नहीं दिखाई दीं। फिर एक सुंदर महल दिखाई दिया। वहाँ (उसमें) भगवान्‌ का एक अलग मंदिर बना हुआ था॥4॥